पशुपालक मित्र

पशुपालन को समर्पित त्रिमासिक पत्रिका

वर्ष : 3 अंक : 1 जनवरी, 2023 कुल पृष्ठ : 19 ISSN: 2583-0511(Online)

Visit us: www.pashupalakmitra.in

पशुपालक मित्र

पशुपालन को समर्पित त्रिमासिक पत्रिका ISSN: 2583-0511(Online)

संपादकीय पैनल

प्रधान संपादक

डॉ. सतीश कुमार पाठक
असिस्टेंट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

संपादक

पशु प्रजनन एवं मादा रोग विशेषज्ञ

1. डॉ.आशुतोष त्रिपाठी
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   स.व.प. कृषि वि.वि., मेरठ
2. डॉ. विकास सचान
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   दुवासू , मथुरा

पशु पोषण विशेषज्ञ

1. डॉ. दिनेश कुमार
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   जे.एन.के.वि.वि., जबलपुर
2. डॉ. संदीप कुमार चौधरी
   असिस्टेंट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पशुधन उत्पादन एवं प्रबन्धन विशेषज्ञ

1. डॉ. ममता
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   दुवासू , मथुरा
2. डॉ. अजीत सिंह
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
3. डॉ. विपिन मौर्य
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

पशु औषधि विशेषज्ञ

1. डॉ. नीरज ठाकुर
   असिस्टेंट प्रोफेसर
   काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

वर्ष : 3 **अंक: 1** **जनवरी, 2023**

क्रमांक	लेख का शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	**घोड़ियों में मद के लक्षण एवं उनकी पहचान :** डॉ. अरुण कुमार, डॉ. नेहा चौधरी, डॉ. मोहित कुमार एवं डॉ. जितेन्द्र अग्रवाल	3-4
2.	**ब्रुसेलोसिस: जानकारी एवं बचाव :** डॉ. सोनम भट्ट, डा. भूमिका एवं डा. अनिल कुमार	5-6
3.	**डेयरी पशुओं में जेर रुकने की समस्या एवं प्रबंधन :** डॉ. दिलीप कुमार यादव एवं डॉ. विकास सचान	7-8
4.	**पशुओं में खाद्यजन्य विशाक्तता एवं बचाव:** डॉ. प्रमोद शर्मा, डॉ. बृजेश कुमार ओझा, डॉ. कुमार गोविल, डॉ. जे. एस. राजोरिया एवं डॉ. मनीष पांडे	9-11
5.	**पशु उत्पीड़न की समस्या :** डॉ. रमेश चंद्र शर्मा	12-14
6.	**अफलाटॉक्सिकोसिस के कारण, उपचार एवं नियंत्रण :** डा. संजय कुमार मिश्र	15-16
7.	**खुरपका मुंहपका रोग(F.M.D) के लक्षण एवं बचाव:** डॉ. दिलीप कुमार यादव एवं डॉ. विकास सचान	17-18

Visit us: www.pashupalakmitra.in

संपर्क सूत्र

डॉ. सतीश कुमार पाठक,
प्रधान संपादक
असिस्टेंट प्रोफेसर,पशुशरीर रचना शास्त्र विभाग,
पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान संकाय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बरकछा, मिर्जापुर-231001, उत्तर प्रदेश
ईमेल आई डी: pashupalakmitra1@gmail.com

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

घोड़ियों में मद के लक्षण एवं उनकी पहचान

अरुण कुमार, नेहा चौधरी, मोहित कुमार एवं जितेन्द्र अग्रवाल

मादा पशु रोग विज्ञान विभाग, पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय मथुरा

घोड़ों का पालन उनकी शारीरिक क्षमता के उपयोग के लिए किया जाता है। इनका उपयोग खेल-कूद में, सेना में, परिवहन इत्यादि में किया जाता है। इन सभी कार्यों के महत्त्व को देखते हुए अधिक से अधिक संतान प्राप्ति करके ही अधिकाधिक लाभ कमाया जा सकता है। घोडियों का पालन आर्थिक रूप से तभी फायदेमंद है जब एक साल में एक संतान पैदा करे। अतः यह अति आवश्यक है कि मादा पशु समय से यौनावस्था प्राप्त करे या प्रसव के बाद सही समय पर मद में आकर पुनः गर्भित हो। जिसके के लिए बहुत जरुरी है कि घोड़ी के मद काल की एवं उस समय होने वाले बदलावों की उचित जानकारी होनी आवश्यक है , जिससे समय से प्राकृतिक अथवा कृतिम गर्भाधान का प्रबंधन आसानी से किया जा सके। इसलिए पशुपालक को प्रजनन और उससे सम्बंधित प्रबंधन के बारे में अच्छी जानकारी होनी चाहिए।

घोडियों में प्रजनन काल मध्य अप्रैल से मध्य सितम्बर तक होता है। घोड़ियों में मद चक्र केवल प्रजनन काल में ही प्रकट होता है। इस काल में अण्डाशय क्रियाशील होते है और पूर्ण विकसित अण्डा मुक्त करते है। घोडियो में मद चक्र लगभग 22 दिनों का होता है और मद 5-7 दिनों का होता है। मद चक्र की इस अवस्था में मादा पशु में नर पशु के साथ प्रजनन करने को आकर्षण बढ जाता है। सही लक्षणों को पहचान कर ही अण्डा मुक्त होने के समय का आंकलन किया जा सकता है जिससे सफल गर्भाधान कराया जा सके।

घोड़ियों में मद के लक्षण जैसे योनि द्वार का लम्बा होना और उसका बाहर कि तरफ दिखना , भग-शिश्न का बार बार अन्दर बाहर होना , घोड़ी का घोड़े कि तरफ जाना , पूंछ को उपर को उठा कर के एक ओर रखना, घोड़ी का बार बार हिन-हिनाना, कानो का आगे कि ओर शिथिल होना, बाड़े की दीवार को धक्का देना, बार बार पीले रंग का पेशाब करना इत्यादि देखने को मिलते है। मद के समय होने वाले ये बदलाव अन्तःश्रावों के कारण होते है।

मद के लक्षण प्रत्येक घोड़ी में अलग अलग प्रबलता के साथ दिखाई देते है , इसलिए इनको पहचानना बहुत आवश्यक हो जाता है। कुछ घोड़ियाँ जिन्हें उनके बच्चो या दूसरी घोड़ियों के साथ रखा जाता है , मद के लक्षण प्रकट ही नही करती है। कुछ घोड़ियाँ ऐसी भी होती है जो कि मद के लक्षण बहुत ही कम प्रबलता के साथ दिखाती हैं। मद के लक्षण पहचानने के लिए कई तरीके अपनाये जा सकते है।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

जिनमे कुछ प्रमुख विधियां टीजिंग करना , घोड़ी का बार बार उसके मद के लक्षणों के लिए परीक्षण करना, मद अनुमान चार्ट बनाना , ध्वनि रिकॉर्डिंग करना , अल्ट्रासोनोग्राफी करना तथा मलाशय का परीक्षण करना इत्यादि हैं। इनमे से टीजिंग करना मुख्य तथा अधिक उपयोग की जाने वाली विधि है। घोड़े कि अनुपस्थिति में घोड़ी मद के लक्षण प्रकट नही करती। घोड़ी मद में बहुत कम ही दूसरी घोड़ियों पर चढ़ती है। मद पहचानने का सबसे आम तरीका टीजिंग है , जिसमे कि घोड़ी नसबंदी किये हुए घोड़े के साथ में रखते है। घोड़ी अगर मद में होती है तो वो घोड़े के थूथुन द्वारा खुद को छूना , खेलना, इत्यादि करने देती है और यदि घोडा ऊपर चढ़ता है तो खुद शांत अवस्था में खड़ी रहकर ऐसा करने देती है। साथ ही साथ मद के अन्य लक्षणों को भी प्रकट करती है । और यदि घोड़ियाँ मद में नही होती वो घोड़े को अपने पास नहीं आने देती, उनको पैर मारती है और काटती है।

समय से मद के लक्षणों की सही पहचान करना बहुत ही महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जिससे गर्भाधान सही समय पर करवाया जा सके। इस प्रकार से गर्भधारण होने की दर को प्रभावी ढंग से बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार से सही वैज्ञानिक जानकारी का उपयोग करके पशुपालक घोड़ियों का प्रजनन प्रबंधन बेहतर तरीके से कर सकते है और अधिक से अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

ब्रुसेलोसिस: जानकारी एवं बचाव

डॉ॰ सोनम भट्ट, डा॰ भूमिका[1] एवं डा॰अनिल कुमार[2]*

बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, पटना

***सहायक प्राध्यापक, औषधि विज्ञान विभाग,**
1. सहायक प्राध्यापक, पशु लोक स्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग
2. सहायक प्राध्यापक, पशु नैदानिक परिसर विभाग

पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कृषि उत्पादन के साथ-साथ पशुपालन किसानों की आजीविका का स्रोत है । इसके लिए पशुओं का रोगमुक्त होना अतिआवश्यक है । मवेशियों में विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ पाई जाती है । उनमें से एक बीमारी का व्याख्यान इस लेख में किया है और उस बीमारी का नाम है ब्रुसेलोसिस । भारत में यह बीमारी बहुत प्रचलित है। इस बीमारी के बारे में बहुत से किसान भाई-बहन नहीं जानते हैं ।

ब्रुसेलोसिस को संक्रामक गर्भपात की बीमारी के नाम से जाना जाता है । यह एक पशुधन रोग है जो गर्भपात के कारण भ्रूण के नुकसान के लिए जिम्मेदार है। ब्रुसेलोसिस ब्रुसेला के जीवाणु के कारण होता है और यह जीवाणु मुख्य रूप से गर्भपात, जरी का न गिरना तथा बांझपन का कारण बनता है। यह बीमारी दुनिया के ज्यादातर देशों में प्रचलित है। यह मुख्य रूप से मवेशी , भैंस, बाइसन, सुअर, भेंड़, बकरी और कभी-कभी घोड़ों में पाई जाती है। यह रोग पशुधन उत्पादकों की क्षमता को कम करके आर्थिक रूप से किसानों को कमजोर कर देता है।

ब्रुसेलोसिस कितना गंभीर है ?

ब्रुसेलोसिस मवेशियों का एक गंभीर रोग है। बीमार पशुओं में दुध उत्पादन क्षमता कम हो जाती है बछड़े का नुकसान, कमजारे या रोग ग्रस्त बछड़े का जन्म, बांझपन तथा गर्भपात जैसे लक्षण मिलते है जिससे किसानों को आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ता है तथा अंतरार्ष्ट्रीय व्यापार में भी कमी आती है। जिससे देश की अर्थव्यवस्था पर भी प्रभाव पड़ता है।

यह बीमारी पशुओं के लिए एक भयानक खतरा है तथ्य यह है कि यह बीमारी तेजी से पुरे पशुशाला में फैल जाती है तथा इसमें पशुओं की मृत्यु भी हो सकती है। यह बीमारी पशुओं से मनुष्यों में भी फैल सकती है जो इसको और अधिक गंभीर बनाता है । इसे अन्डुलेंटबुखार, मालटा बुखार तथा मेडीटेरेनियन बुखार के नाम से जाना जाता है। मनुष्यों को यह बीमारी मुख्यतः दुध और बीमार पशुओं के स्राव के साथ निकट सम्पर्क के कारण होता है। नए खरीदे गए पशु को पशु बाड़े में शामिल करने से पहले लगभग 15 दिनों तक निगरानी में रखना चाहिए । आवास की साफ-सफाई अच्छी तरह से होनी चाहिए ।

कारणः

1. मवेशी में यह रोग विशेष रूप से ब्रुसेला अबोरटस के कारण होता है।
2. संक्रमण तेजी से फैलता है और जिन मवेशियों में टीकाकरण नहीं हुआ होता है उनमें यह गर्भपात का कारण बनता है ।
3. प्राकृतिक संचरण जीवों के अंतर्ग्रहण द्वारा होता है, जो बड़ी संख्या में गर्भस्थ, भ्रूर्ण, भ्रूर्ण झिल्ली और गर्भाशय के बहाव में मौजूद होते हैं।
4. दूषित चारा और पानी के पीने से भी यह बीमारी होती है । यह अन्य जानवरों की दूषित जननांगो के चाटने से भी होता है ।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

5. कृत्रिम गर्भाधान द्वारा यह बीमारी हो सकती है । जब ब्रुसेला दूषित वीर्य गर्भाशय में जमा हो जाता है ।

लक्षणः

1. यह मुख्य रूप से परिपक्व जानवरों में होता है ।
2. यौन परिपक्व और गर्भवती मवेशी संक्रमण के लिए अधिक संवेदनशील होते है।
3. गर्भपात सबसे महत्वपूर्ण लक्षण है। गर्भपात मुख्य रूप से गर्भावस्था के अंतिम तीन महीनें में होता है।
4. संक्रमण कमजोर बछड़ों, जरी का न निकलना तथा दूध के उत्पादन को भी कम करता है।
5. बैल में वाहय जननांग जैसे-अंडकोष मुख्य रुप से संक्रमित हो सकते है ।
6. लम्बे समय तक संक्रमण के कारण मवेशियों में गठिया भी एक लक्षण देखनें को मिलता है ।

निदानः

1. निदान जीवाणु विज्ञान या सीरोलॉजी पर आधारित है ।
2. बैक्टीरिया को जरी से बरामद कर सकते है। लेकिन गर्भस्थ भ्रूण के पेट और फेफड़ों से शुद्ध रूप से जीवाणु मिलते हैं ।

उपचारः

ब्रुसेलोसिस का कोई इलाज नहीं है।संदेह के मामले में पशुचिकित्सक से परामर्श करें।

रोकथामः

1. टीकाकरण ही रोगनियंत्रण का एकमात्र साधन है।
2. 4-8 महीने की उम्र में मादा बछड़ों के लिए टीकाकरण किया जाता है ।
3. ब्रुसेलोसिस से बचाने के लिए जीवनकाल में केवल एक टीकाकरण की आवश्यकता होती है ।
4. ब्रूसेलोसिस के लिए 5 वें महीने से किसी भी गर्भपात का संदेह होना चाहिए।
5. गर्भपात के बाद कम से कम 20 दिनों के लिए पशुको तुरंत अलग कर दें।
6. गर्भस्थ भूर्ण, जरी, दूषित बिस्तर, चारा आदि, चूने के छिड़काव के बाद (कम से कम 4 फीट गहरे) दफन किया जाना चाहिए । इन सामग्रियों में बहुत अधिक जीवाणुभार होता है और अनुचित तरीके से निपटाने से खाद्य स्रोतों (चरागाह, चारा, पानी) को दूषित करके बीमारी फैलती है।
7. बीमार पशुओं को अलग करने के बाद पशुशाला को कीटाणु रहित करें।
8. बीमार पशु के योनि स्राव को 1-2% या 5% सोडियम हाइपो क्लोराइट (ब्लीच) घोल के साथ कीटाणु रहित करें।
9. पशुपालक को संक्रमित पदार्थ को नंगे हाथों से नहीं छूना चाहिए क्योंकि यह बीमारी बीमार पशु से आपको भी हो सकती है ।

पशुपालक मित्र 3(1): 7-8 ; जनवरी, 2023
ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

डेयरी पशुओं में जेर रुकने की समस्या एवं प्रबंधन

डॉ.दिलीप कुमार यादव, आईसीएआर- एनडीआरआई, करनाल एवं डॉ. विकास सचान, दुवासु, मथुरा

सामान्यतः गाभिन पशुओं में ब्याने के 3-6घंटे के अंदर जेर स्वतः बाहर निकलआती है , परन्तु यदि ब्याने के 8-12 घंटे के बाद भी जेर नहीं निकला तो उस स्थिति को जेर के रुकने की स्थिति कहा जाता है। जेर की रुकने की समस्या का डेयरी पशु के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

कारण

डेयरी पशुओं जेर रुकने की समस्या आमतौर पर कठिन प्रसव , मिल्कफीवर और जुड़वाँ बच्चे के जन्म से जुड़ा होता है।

लक्षण

1. बच्चेदानी के बाहर जेर लटकना देखा जा सकता है।

2. जेर के टुकड़े बच्चेदानी केअंदर होने पर हाथ डालकर महसूस किया जा सकता है।

3. पशु द्वारा पेट पर बार- बार पैर मारना और दर्द का अनुभव करता है।

4. तेज बुखार होना तथा दूध की मात्रा एकदम कम हो जाना ।

5. बच्चेदानी से दुर्गन्ध काआना।

6. अधिक समय बीतने पर बच्चेदानी से मवाद का बाहर निकलना ।

7. पशु का जेर रुकने के कारण पशु का बैचेन होना।

8. पशु का बार –बार उठना तथा बैठना ।

बचाव एवं प्रबंधन

- ब्याने से 1-2 माह पूर्व दाना मिश्रण के साथ लगभग 150-250 ग्राम सरसों या मूंगफली का तेल रोजाना देना चाहिए ।यह जेर के सही समय पर निकलने में सहायता प्रदान करता है ।
- ब्याने के तुरंत बाद पशुको 0.5-1 किलो गुड़ व गेंहू का दलिया देना चाहिए । इससे जेर निकलने में मदद मिलती है ।
- ये पाया गया है की गर्भावस्था के आखिर महीने में अगर पशुको सेलेनियम और विटामिन दिया जाए और हल्का व्यायाम कराया जाए तो जेर बिल्कुल सही समय पर निकल जाता है।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

निदान

- अटके हुए जेर को योनि मार्ग में हाथ डालकर धीरे-धीरे खींचकर निकलने का तरीका कई सालों से प्रयोग किया जा रहा है लेकिन कई शोधो से ये ज्ञात हुआ की इससे बच्चेदानी की नाजुक परत को बहुत नुकसान पहुँचता है । सामान्यत: यह देखा गया है जेर रुकने के कारण पशु के बच्चेदानी में सूजन आ जाती जिसका उचित उपचार किसी पशुचिकित्स्क से करवाना चाहिए है ।
- यहां के वातावरण में सबसे बेहतर उपाय यही है की योनि के रास्ते बायाँ हाथ डालकर कैरुनकल और कॉटीलेडोन को छुड़ाया जाए तथा दाए हाथ से जेर का जितना हिस्साआसानी से निकलता है उसे धीरे-

- धीरे निकाला जाए ।अगर पूरी तरह जेर नहीं निकल पा रहा होतो अत्याधिक जोर का उपयोग नहीं करनी चाहिए।
- जेर को निकलने के बाद 3-5 दिन तक बच्चेदानी में 2-4 एंटी – बायोटिक के बोलस रखना चाहिए।
- संक्रमण को रोकने के लिए 2-5 दिन तक अंतर्पेशीय मार्ग से एंटी –बायोटिक लगाना चाहिए।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

पशुओं में खाद्यजन्य विशाक्तता एवं बचाव

डॉ. प्रमोद शर्मा, डॉ. बृजेश कुमार ओझा, डॉ. कुमार गोविल, डॉ. जे. एस. राजोरिया एवं डॉ. मनीष पांडे

पशु सहायक प्राध्यापक ,पशुचिकित्सा विज्ञान एवं पशुपालन महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

पशुओं में प्रकृति प्रदत्त गुण है कि वे खाने योग्य वनस्पति को ही खाते है , परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों जैसे अधिक भूखे होन पर या सूखे/अकाल की स्थिति में जब उन्हें हरा चारा नहीं मिलता तो वे जो भी हरा दिखता है मजबूरी में खा लेते है। आजकल चारागाह की जमीनें भी धीरे-धीरे कम होती जा रही है अतः उनमें भी कुछ वनस्पति जो जहरीली रहती है जानवर उनको भी कई बार चर लेते है।

वनस्पति जो मुख्य रूप से विषैली होती है वे निम्नानुसार है।

1. सायनोजेनेटिक पौधे
2. प्रकाश की संवदेनशीलता बढ़ाने वाले पौधे
3. आक्जलेट पैदा करने वाले पौधे
4. सेलेनियम वाले पौधे
5. नाइट्रट वाले पौधे
6. अन्य पौधे जैसे बेशर्म, कनेर, धतूरा एवं अंरडी इत्यादि।

1. **सायनोजेनेटिक पौधे-** ऐसे पौधे जिनमें हायडोसायनिक अम्ल होता है उनको सायनोजेनेटिक पौधे कहते है जैसे ज्वार, मक्का के पौधे, सूडान घास, असली, गन्ने की पत्ती एवं जानसन्स घास इत्यादि।

ज्वार, मक्का में कुछ विशेष स्थिति में ही हाड्रोसायनिक अम्ल होता है अन्यथा ये जहरीले नहीं होते जैसे कि लगभग घुटने की ऊँचाई के पौधे या बुवाई के 45 दिन बाद के पौधों में यह अम्ल अधिकता में रहता है या पौधे सूखे की स्थिति में या पानी न मिलने के कारण बढ़ नहीं पाते तब भी अम्ल की अधिकता रहती है। गाय और भैंस इस विषाक्तता के लिये अधिक संवेदनशील होते है जबकि भेड़ तुलनात्मक रूप से इन विषाक्तता से कम प्रभावित होती है। घोड़े और सुकर बहुत कम ही इस से प्रभावित होते है। उदाहरणार्थ पौधे के 100 ग्राम वजन में 20 मि.ग्रा. हाईड्रोसायनिक अम्ल होता है तभी वह पौधा जहरीला होता है।

लक्षण- यह एकदम से प्र कट होता है। इसकी विषाक्तता 2 घंटे के अन्दर ही पशु की जान ले लेती है। जानवर लड़खड़ा कर चलता है बैचेन रहता है , स्वसन क्रिया में तकलीफ होती है , कमजोर परन्तु तेजी से नब्ज चलती है, जानवर जमीन पर लेट जाता है और पूँछ और आगे के पैर खिच जाते है। कभी-कभी

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

गैस भी बहुत बनती है तो पेट फूट जाता है शलेष्म झिल्ली का रंग नीला सा पड़ जाता है। पशु की मृत्यु शवसन क्रिया के रूकने के कारण होती है।

सावधानी: चरने के बाद जब जानवर शाम को लौटते है तभी अचानक यह देखने मे आता है। शुरुवात में एक दम लाल सुर्ख शलेष्म झिल्ली दिखती है अतः ऐसा हो तो तुरन्त उपचार करावें। नाइट्रेट उर्वरकों को प्रयोग करने पर उस वनस्पति का उपयोग चराने में न करें।

2. **प्रकाश की संवदेनशीलता बढ़ाने वाले पौध-** कुछ पौधे ऐसे होते है जिनको जानवर खाने के बाद प्रकाश के प्रति संवेदन शील हो जाते है। इस बीमारी के लक्षण त्वचा पर स्पष्ट दिखायी देते है। यह शरीर के उन भागों पर दिखते है जो सूर्य प्रकाश के सीधे संपर्क में आते है , और हल्के रंग के होते है (कान , चेहरा, ओंठ, थन, नथूने, पलकों आदि) जानवर की चमड़ी पर लालपन , सूजन एवं खुजली होना आदि दिखाई देता है। जब खुजली होती है तो सख्त जगह पर जानवर रगड़ लेता है जिससे सीरस द्रव्य का रिसाव होने लगता है। फिर सड़ान भी हो सकती है। नाक मे अत्यधिक सूजन आ जाये तो साँस लेने में भी तकलीफ होने लगती है। जब ज्यादा दिन तक यह विषाक्तता चलती रहे तो भूख न लगना , अंधापन लड़खड़ाना और लकवा आदि लक्षण दिखते है।

सावधानी- जैसे पूर्व में बतायी गई है।

3. **आक्जलेट पैदा करने वाले पौधे-** ताजे गन्ने के ऊपरी हिस्से, पेरा (धान का भूसा), भूसा आदि फंगस (कवक) द्वारा खराब हो गया हो, शकरकंद आदि।

लक्षण- भूख न लगना, कमजोरी, मूत्र में रक्त का आना, लार बहना, मूत्र कम बनना, दूध का उत्पादन घट जाना। बहुत ज्यादा दिन हो जाने पर लकवा जैसे स्थिति भी हो जाती है।

सावधानी- तुरन्त ऐसा चारा बंद कर दें। जल में या चारे में चूने का पानी या डायकैल्शियम फास्फेट दें। पानी अधिक से अधिक पिलाये।

4. **सेलेनियम तत्व वाले पौधे-** कुछ पौधे जेसे चना, गेहूँ, मक्का में यह तत्व मिल जाता है यदि वे जिस भूमि पर उत्पन्न हो रहे है उसमें इस तत्व की मात्रा अधिक होती है। इसमें प्रमुख लक्षण बाल झड़ना, पूँछ के बाल झड़ जाना, खुर का बढ़ जाना और इतना बढ़ जाता है की वह ऊपर की ओर मुड़ जाता है और फिर खुर की ऊपरी सतह निकल जाती है। जानवर लंगड़ाता है।

सावधानी- ऐसी जमीन पर उत्पन्न वनस्पति को चारे के रूप में प्रयोग न करें।

5. **नाइट्रेट अधिकता वाले पौधे-** ऐसे पौ धे जिनमें नाइट्रेट की मात्रा अधिक रहती है उनको खा लेने पर इसकी विषाक्तता होती है। सोलेनम , सौरघम, ब्रेसिका, ऐमरेनथस प्रजातियाँ आदि के पौधों में नाइट्रेट अधिकता में रहता है। नाइट्रेट उर्वरक के डालने पर भी वनस्पति में अधिक नाइट्रेट होता है जो कि विषाक्तता कर सकता है।

लक्षण- शवसन संबंधी तकलीफ होना।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

6. अन्य पौधे -

(अ) **बेशर्म-** इसकी विषाक्तता भेड़ , बकरी में अधिकतर देखने को मिलती है। इसमें शवसन में तकलीफ होना, यकृत विषाक्तता कमर के हिस्से में लकवा इत्यादि लक्षण पाये जाते है।

(ब) **कनेर-** यह सफेद/गुलाबी/पीले रंग के फूल वाला पेड़ होता है। इसकी विषाक्तता का प्रभाव त्वरित होता है। यह सभी जाति के प्राणियों को प्रभावित करती है। आहार नलिका की सूजन , उल्टी होना, जुगाली बंद हो जाना, पेट फूल जाना, मांसपेशीय संकुचन, चक्कर आना, बेहोशी और मृत्यु हो जाना।

(स) **धतूरा-** धतूरा सेवन से सभी जाति के पशु प्रभावित होते है। केवल खरगोश को इसका असर नहीं होता। हल्की पर तेज नब्ज, मुँह का सूखना, असंतुलित होना, आँख की पुतली का फैल जाना, जुगाली बंद हो जाना, चक्कर आना और मृत्यु हो जाना। मृत्यु हृदय गति रूक जाने से होती है।

(द) **अरंडी-** इसकी विषाक्तता सभी जाति के पशुओं में होती है। दस्त लगना , दस्त में आव आना, लार बहना, लड़खड़ाना, असंतुलित होना।

उपरोक्त मुख्य वनस्पति जो पशुओं में विषाक्तता का कारण बनती है इसके अलावा बरसीम जो कि सीमा से अधिक खाने पर गैस बनाती है और पेट फूट जाने पर सांस रूक जाती है और पशु ओ की मृत्यु तक हो जाती है।

चारागाहों से ये विषाक्त वनस्पति उखाड़ देना चाहिए अथवा पशुओं को स्वंय चारा काट कर खिलाना चाहिए ताकि इन खतरनाक जहरीली वनस्पति से बचा जा सके। यदि लक्षण आ ही जाते है तो तुरंत नजदीकी पशु चिकित्सक से इलाज करवाना चाहिये।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

पशु उत्पीड़न की समस्या

डॉ. रमेश चंद्र शर्मा
मानद भारतीय जीव जंतु कल्याण अधिकारी
भारतीय जीव जंतु कल्याण बोर्ड
वन एवम पर्यावरण मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली

भारत के प्रथम प्रधान मंत्री एवं स्वतंत्रता सेनानी पंडित जवहाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा 'मेरी कहानी' में हमारे यहाँ के घरेलू पशुओं के बारे में एक सटीक टिप्पणी की है। भारत के गाँवों में घूमते हुए उन्होंने गाय, बैल, भैंस आदि पशुओं को अत्यंत दयनीय दशा में देखा। उन्होंने कहा "एक ऐसे देश में जहाँ जीवमात्र के प्रति दया और परोपकार की बातें बढ़-चढ़कर कही जाती हैं वहाँ घरेलू पशुओं के साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। उन्हें अत्यंत गंदे स्थानों में रखा जाता है तथा उनके खाने-पीने की व्यवस्था भी ठीक नहीं है।"

सचमुच हमारे वचनों, हमारे विचारों का संबंध हमारे कर्मों से नहीं है। गाय को माता कह भर देने से ही गौ जाति की उन्नति नहीं हो जाती और शायद इसीलिए बूढ़ी गाएँ कसाईखानों तक पहुँच जाती हैं। घरेलू पशुओं की सेवाओं का आकलन करें तो ये मानव के लिए नितांत अखाद्य जैसे – घास, भूसा, चोकर, पुआल, गेहूँ की डंठल, पेड़ों की पत्तियाँ, फलों के छिलके आदि खाकर भी हमारी विभिन्न प्रकार से सेवा करते हैं।

गाय और भैंस अमृत तुल्य दूध देकर हमारे शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं। बैल व भैंस कृषि की रीढ़ माने जाते हैं, ट्रैक्टरों के निर्माण से पहले तक खेतों की जुताई तथा वस्तुओं की ढुलाई का पूरा दारोमदार इन्हीं पर था।

रेगिस्तानों में ऊँट का विकल्प आज तक नहीं ढूँढ़ा जा सका है। घोड़े इक्कों में आज भी जुतते हैं, धोबियों के लिए गदहों की उपयोगिता सदियों से बनी हुई है। गाय, बैल, भैंस, बकरी आदि पशुओं का गोबर इतना अच्छा प्राकृतिक खाद है कि इसकी तुलना किसी भी अन्य खाद से नहीं की जा सकती। हिंदुओं की पूजा में भी गोबर का प्रयोग होता है, ग्रामीण अपने आँगन की लिपाई गोबर से ही किया करते हैं। भेड़ ऊन के एकमात्र अच्छे स्त्रोत हैं। हमारे देश का संपूर्ण चमड़ा उद्योग इन पशुओं के बलबूते ही चलता है। मांस और अंडों की संपूर्ण उपलब्धता घरेलू पशु-पक्षियों पर निर्भर करती है।

पशु-उत्पीड़न कोई नई समस्या नहीं है। सदियों मे पशुओं के साथ बुरा व्यवहार होता आया है। इतिहास की पुस्तकों से पता चलता है कि मानव का पहला साथी कुत्ता बना क्योंकि इसकी स्वामिभक्ति पर आज तक किसी प्रकार का संदेह नहीं व्यक्त किया गया है। जैसे-जैसे मानव घर बसाकर रहने लगा, उसे खेती करने की आवश्यकता हुई वैसे-वैसे पशुओं का महत्व भी बढ़ता गया।

आर्य संस्कृति में गौ-जाति का बड़ा महत्व था, जिसके पास जितनी अधिक गाएँ होती थीं वह उतना ही प्रतिष्ठित और संपन्न माना जाता था। ऋषि-मुनि भी गौ पालते थे, वनों में घास की उपलब्धता प्रचुर थी। समय के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताओं का विस्तार हुआ, तब उन्होंने गाय, भैंस, बैल, बकरी, ऊँट, घोड़ा, गदहा, कुत्ता आदि पशुओं को पालना आरंभ किया।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

युद्ध के मैदानों में घोड़ों और हाथियों की उपयोगिता अधिक थी , अत: राजे-महाराजे इन पशुओं को बड़ी संख्या में पालते थे । मशीनीकृत वाहनों के आविष्कार के पहले घोड़ा सबसे तेज गति का संदेशवाहक था । चाहे वस्तुओं की दुलाई हो अथवा मनुष्यों की हमारे घरेलू पशु इसके एकमात्र साधन थे । ग्रामीण भारत में बैलगाड़ियों की उपयोगिता आज भी बरकरार है ।

इतनी सारी उपयोगिताओं के बावजूद पशुओं का उत्पीड़न मानवीय बुद्धिमत्ता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता । घरेलू पशुओं को मल-मूत्र से संयुक्त कीचड़ में बैठने तथा खड़े होने के लिए विवश कर दिया जाता है । गाड़ियों में हाँके जाने वाले पशुओं को प्राय: इतनी निर्दयता से पीटा जाता है मानो वे निष्प्राण वस्तुएँ हों ।

पशुओं से काम तो भरपूर लिया जाता है लेकिन भोजन के नाम पर उनके समक्ष थोड़ी सी सूखी घास डाल दी जाती है । विपरीत मौसम में भी उन्हें खुले में रखा जाता है । बीमार पशु-पक्षियों के मामले में तो हमारी उपेक्षा और दयाहीनता पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है । गौ सेवा के व्रती अपना व्रत तोड़कर पशुओं को विभिन्न प्रकार से कष्ट पहुँचाते हैं ।

दो दशक पूर्व तक हमारे देश में दुग्ध उत्पादन की मात्रा प्रति व्यक्ति के हिसाब से बहुत कम थी क्योंकि हमारे पशु दुर्बल थे, इनकी नस्लें कमजोर थीं । विज्ञान के प्रभाव से पशुओं की नस्लें सुधारी गईं तब दूध का उत्पादन किसी सीमा तक बढ़ सका जिसे श्वेत क्रांति का नाम दिया गया ।

पहले की तुलना में आज दुधारू व अन्य घरेलू पशुओं का लालन-पालन कहीं अच्छे ढंग से होता है । बीमार पशुओं का इलाज आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से हो रहा है । यही कारण है कि दूध , दही, मक्खन, घी, मांस, अंडा आदि खाद्य वस्तुओं का उत्पादन कई गुणा बढ़ा है । परंतु घरेलू-पशुओं के उत्पीड़न की समस्या कई रूपों में आज भी बनी हुई है ।

यदि हम वन्य प्राणियों की चर्चा करें तो यहाँ भी मानवीय नासमझी और दयाहीनता के प्रमाण मिल जाते हैं । वनों का क्षेत्र सीमित रह जाने तथा वन्य प्राणियों के अंधाधुंध शिकार के कारण उनकी कई प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर हैं । स्थिति की गंभीरता को देखते हुए वन्य पशुओं के शिकार को प्रतिबंधित किया गया तथा लुप्तप्राय जंतुओं के संरक्षण के लिए कई अभयारण्य बनाए गए ।

जनसंख्या में वृद्धि के परिणामस्वरूप खेती योग्य भूमि की अधिक आवश्यकता हुई तो वनों को साफ कर दिया गया । नतीजे में वन्य पशुओं के प्राकृतिक आवास नष्ट होते चले गए । प्रकृति के ये सुंदर जीव हमारे पर्यावरण के अहम् हिस्से हैं लेकिन मानव की क्रूरता एवं अदूरदर्शिता के कारण वन्य प्राणियों तथा जल पक्षियों के लिए जीना तक दुश्वार हो गया है ।

मदारी भालुओं और बंदरों को पकड़कर उन्हें हर समय नचाते रहते हैं , उन्हें कुछ आदतें सिखाने के लिए कई तरह से प्रताड़ित किया जाता है । वन्य पशुओं को सरकसों व चिड़ियाखानों में उनके प्राकृतिक आवास से दूर बुरी दशा में रखा जाता है । सँपेरे साँपों को कैदकर उन्हें यातनापूर्ण जीवन जीने के लिए विवश कर देते हैं । हालाँकि ऐसे सभी कार्य कानून की दृष्टि में पूर्णतया प्रतिबंधित हैं मगर व्यवहार में इस तरह का पशु उत्पीड़न अभी भी हो रहा है ।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

पशु-पक्षियों के उत्पीड़न के कई पहलू हैं । जब हम अपने पिंजड़ेखाने में एक तोते को बंद रखते हैं तब यह एक अमानवीय कृत्य है । एक पक्षी की स्वच्छंद भावना इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है:

" हम पंछी उन्मुक्त गगन के पिंजर बद्ध ना गा पाएँगे । कनक तीलियों से टकराकर , पुलकित पंख टूट जाएँगे । कहीं भली है कटुक निबोरी, कनक कटोरी की मैदा से ।"

हमारी तरह पशु-पक्षियों को भी अपनी स्वतंत्रता प्यारी होती है । पशु-पक्षी पृथ्वी की आहार-श्रृंखला को बनाए रखकर जहाँ मिट्टी को उर्वर बनाते हैं वहीं हमारा पर्यावरण भी संतुलित रहता है । अत: पशुओं का उत्पीड़न हर प्रकार से वर्जित होना चाहिए ।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

अफलाटॉक्सिकोसिस के कारण, उपचार एवं नियंत्रण

डा. संजय कुमार मिश्र

पशु चिकित्सा अधिकारी पशुपालन विभाग मथुरा उत्तर प्रदेश

हमारे समाज में पशुओं को बचा हुआ सड़ा गला खाना देना तथा कवक लगी हुई चीजें खिलाना एक आम बात है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह कवक माइकोटॉक्सिंस नामक टाक्सिन पैदा करती है, जो मनुष्यों एवं पशुओं के लिए अत्यंत हानिकारक है। सन 1960 में अफलाटॉक्सिन की खोज की गई। अक्सर यह देखा गया है जो अनाज मनुष्य के उपयोग हेतु अच्छा नहीं माना जाता है , अर्थात उसमें कवक /फफूंद लगा होता है , ऐसे अनाज को पशुओं को खिलाने से उनमें अफलाटॉक्सिकोसिस हो जाती है।

कारण:

एस्पेरगजिलस फलेवस नामक कवक से विषैला पदार्थ उत्पन्न होता है। यह चार प्रकार के होते हैं यह पानी में नहीं घुलते हैं इन पर गर्मी का कोई विशेष असर नहीं होता है। मूंगफली , कपास के बिनोले तथा कुछ अन्य प्रकार के दानों में कवक द्वारा अफलाटॉक्सिन जल्दी बनता है। इसका संक्रमण फसल कटने से पहले , कटने के बाद , दाने को भंडारित करते समय तथा कई बार मौसम में आई अचानक नमी व बरसात के कारण हो सकता है।

पशुओं मे विषाक्तता:

लगभग सभी तरह के पशु पक्षी अफलाटॉक्सिन से प्रभावित हो सकते हैं, फिर भी प्रजाति, नस्ल, लिंग, उम्र तथा आहार के आधार पर इसका प्रभाव कम या अधिक हो सकता है। बतख एवं मुर्गे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। यह शरीर में सबसे अधिक यकृत को नुकसान पहुंचाता है , जिससे पशु पक्षी की मौत भी हो सकती है। कुत्तों में यकृत गल जाता है तथा आकार में भी बहुत बड़ा हो जाता है।

लक्षण:

- भूख कम लगना, पशु की वृद्धि दर रुक जाना, दूध में कमी।
- सुस्ती, दस्त में रक्त का निकलना, कमजोरी, एनीमिया।
- भैसों में पीलिया तथा गायों में दिमागी लक्षण, अंधापन, गोल घेरे में चलना, तड़पना ।
- कुत्तों में जलोदर (पेट में पानी भर जाना), अधिक मृत्यु दर।

निदान:

- **रोग का इतिहास**-सड़ा गला कवक लगा हुआ और खाना।
- लक्षणों एवं प्रयोगशाला में परीक्षण द्वारा।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

उपचार: शरीर में कवक(फंगस) द्वारा पैदा किया जाने वाला अफलाटॉक्सिन के असर को कम करने की कोशिश करनी चाहिए जो इस प्रकार की जा सकती है--

- पशु आहार में लिवर टॉनिक, प्रोटीन और मैथिओनीन देना चाहिए।
- पशु को दिए जाने वाले चारे दाने को 2 से 3 दिन तक धूप में रखें।
- एंटीफंगल एजेंट जैसे पोपियोनिक एसिड, कैल्शियम प्रोपियोनेट देना चाहिए।

मात्रा:- २-८ किलोग्राम प्रति टन आहार में मिला कर दें।

नियंत्रण:

- अफलाटॉक्सिन का पूरी तरह नष्ट होना मुश्किल है।
- पशुओं को जांच परख कर आहार दें।
- चारे दाने को वैज्ञानिक ढंग से काटे सुखाएं तथा भंडारित करें।
- चारे दाने को यातायात के समय विशेष ध्यान रखें।
- समय-समय पर पशु आहार की गुणवत्ता की जांच अवश्य कराएं।

निष्कर्ष:

हाल ही में भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण (FSSAI) ने राष्ट्रीय दुग्ध सुरक्षा तथा गुणवत्ता सर्वेक्षण 2018 की रिपोर्ट जारी की। जिसके प्रमुख बिंदु निम्नांकित है:

सर्वेक्षण में परीक्षण किये गए दुग्ध के नमूनों में से लगभग 93% दुग्ध को उपभोग के लिये सुरक्षित पाया गया तथा शेष 7% नमूनों में एफ्लाटॉक्सिन-एम 1 (Aflatoxin-M1), एंटीबायोटिक्स जैसे दूषित पदार्थों की उपस्थिति पाई गई। सर्वेक्षण में दुग्ध को काफी हद तक सुरक्षित पाया गया है , हालाँकि मिलावट की तुलना में संदूषण एक अधिक गंभीर समस्या बनकर उभरा है। कच्चे दुग्ध की तुलना में प्रसंस्कृत दुग्ध (Processed Milk) में एफ्लाटॉक्सिन-एम1 की समस्या अधिक प्रभावी रूप से पाई गई है। दुग्ध में एफ्लाटॉक्सिन-एम 1 का स्रोत चारा तथा भूसा है जिसके लिये वर्तमान में देश में कोई विनियमन नहीं है। तमिलनाडु, दिल्ली तथा केरल शीर्ष तीन राज्यों में एफ्लाटॉक्सिन-एम 1 की मात्रा सर्वाधिक पाई गई।

एफ्लाटॉक्सिन-एम1 (Aflatoxin-M1, AFM1):

एफ़्लाटॉक्सिन कुछ कवकों द्वारा उत्पादित वे विषाक्त पदार्थ हैं जो आमतौर पर मक्का, मूँगफली, कपास के बीज जैसी अन्य कृषि फसलों में पाए जाते हैं। इनकी प्रकृति कैंसर उत्पन्न करने वाली (Carcinogenic) होती हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization) के अनुसार, 1 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम या इससे अधिक के एफ्लाटॉक्सिन सांद्रतायुक्त वाले भोजन के सेवन से एफ़्लैटॉक्सिकोसिस (Aflatoxicosis) होने का संदेह होता है जिसमें पीलिया, सुस्ती तथा मितली जैसे लक्षण प्रकट होते हैं, जिससे अंततः मृत्यु भी हो सकती है।

इसके अतिरिक्त दुग्ध में AFM1 की उपस्थिति से बच्चों में बौनापन की समस्या उत्पन्न होती है।

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

खुरपका मुंहपका रोग(F.M.D) के लक्षण एवं बचाव

डॉ. दिलीप कुमार यादव (पीएचडी स्कॉलर, आईसीएआर- एनडीआरआई, करनाल,) एवं
डॉ. विकास सचान (सहायक प्राध्यापक, दुवासु, मथुरा)

खुरपका एवं मुंहपका रोग (Foot and Mouth Disease) एक तेजी से फैलने वाला विषाणु जनित संक्रामक रोग है जो मुख्यतः खुरवाले पशुओं को प्रभावित करता है पालतू पशुओं में इस रोग से गाय, भैंस, बकरी, भेड़, सूकर, ऊंट इत्यादि प्रभावित होते हैं । इस रोग में पशु को तेज बुखार होता है एवं उसके मुंह एवं खुर एवं थनों पर छाले पड़ जाते है। ये रोग बसंत एवं वर्षा ऋतु में अधिक होता है ।

बीमारी फैलने का ढंग

यहबीमारी मुख्यतः बीमार पशु के सीधे संपर्क में आने से, प्रदूषित दाने चारे व पानी से तथा रोगग्रस्त पशु के स्राव और उत्सर्जन जैसे लार, दूध एवं फफोला के तरल पदार्थ द्धारा फैलती है । पशुशाला में कार्यरत कर्मियों के जूते, चप्पल एवं कपड़े भी विषाणु के स्रोत हो सकते हैं । संदूषित बर्तन, नाद, कृषि उपकरण एवं गाड़ी के टायर आदि भी विषाणु के स्रोत हो सकते हैं । प्रभावित पशुओं के एक जगह से दूसरी जगह परिवहन से भी विषाणु फैलते हैं । अगर कोई रोगग्रस्त पशु उपचार के बाद रोगमुक्त हो जाता है तो भी उसके शरीर के अंदर 6 माह तक विषाणु रहते है जो निष्कासित होते रहते हैं । इनके स्राव के संपर्क में आने पर स्वस्थपशु संक्रमित हो सकते है ।

लक्षण

पशुको 24-48 घंटों तक तेज बुखार(104-106°F) होता है। पशु की भूख कम हो जाती है एवं दुग्ध उत्पादन घट जाता है । पशु के मुंह सेअत्याधिक झागदार एवं रेशेदार लार टपकने लगती है । खुरों के बीच व ऊपर उपस्थित मुलायम त्वचा में छाले पड़ने की वजह से पशु लंगड़ाने लगता है । पशु के मुंह व जीभ में घाव हो जाता है । गाभिन पशुओं में कभी-कभी गर्भपात भी हो जाता है। पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम हो जाती है । जब ये बीमारी छोटे बछड़ों को होती है तो उनमें मृत्युदर भी देखी गयी है ।

खुरों के बीच में घाव (Ulcer)

ISSN: 2583-0511 (Online), www.pashupalakmitra.in

उपचार

इस रोग का कोई प्रभावशाली इलाज नहीं है एवं फिर भी रोग के लक्षणों के आधार पर उपचार किया जाता है । पशुपालक को किसी योग्य पशुचिकित्सक से इलाज कराना चाहिए ।

बचाव

खुरपका मुंहपका का प्रभाव होने पर तुरंत स्थानीय पशुचिकित्सक को सूचित करना चाहिए । रोग से प्रभावित पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखना चाहिए। जहां भी खुरपका मुंहपका का प्रकोप है एवं वहाँ के पशुओं को चरने या बाहर घूमने नहीं देना चाहिए एवं इससे अन्य पशुओं में संक्रमण होने से बचाव होगा । रोगग्रस्त गाय का दूध बछड़े को पीने नहीं देना चाहिए । जहां पशुओं को रखा जाता है एवं वहाँ फिनाइल एवं डेटोल आदि से समुचित साफ़ सफाई करना चाहिए । दूध के बर्तन एवं पशुपालक को स्वयं भी अपने हाथ पैर कीड़े, टोल, साबुन आदि से सफाई करनी चाहिए । हर एक दुधारू पशुको खुरपका मुंहपका रोग का टीका अवश्य लगवाना चाहिए । पहला टीका चार माह की आयु में लगाना चाहिए। पहली बार टीकाकरण के ठीक चार सप्ताह के बाद बूस्टर खुराक देनी चाहिए एवं इसके बाद प्रत्येक छह माह के अंतराल पर टीके की खुराक अवश्य दिलवाना चाहिए । टीकाकरण से पंद्रह दिन पूर्व कृमिनाशक अवश्य देना चाहिए । इससे टीके का प्रभाव उत्तम होगा एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होगी। टीकाकरण के बाद पशुओं को पूर्ण आहार देना चाहिए । जहां तक संभव हो एक ही समय पर सभी पशुओं का टीकाकरण करवाना चाहिए, जिससे समूह प्रतिरक्षा विकसित हो सके । गर्भवती पशुओं को जो तीसरी तिमाही के गर्भावस्था को पार कर चुकीं हों उनका टीकाकरण नहीं करवाना चाहिए । ऐसे पशुओं का प्रसव के बाद ही टीकाकरण करवाना चाहिए ।

किसी भी नए पशु मेले से लौटने वाले मवेशी को कम से कम 2 सप्ताह तक अलग रखना चाहिए और पुराने पशुओं के समूह में सम्मिलित करने से पहले टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए ।

पशुपालक स्थानीय पशुचिकित्सालय से इसकी जानकारी प्राप्तकर पशुओं का टीकाकरण करा सकते है ।

पशुपालक मित्र
पशुपालन को समर्पित त्रिमासिक पत्रिका ISSN: 2583-0511(Online)

- लेख हिन्दी में मंगल फॉन्ट एवं microsoft word में होने चाहिये ।
- लेख पशुपालन से संबन्धित होना चाहिये।
- लेख में वैज्ञानिक या तकनीक शब्दों का कम से कम प्रयोग होना चाहिए ।
- लेख की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि पशुपालक को समझने में परेशानी न हो ।
- लेख के प्रकाशन का निर्णय संपादक का होगा।
- लेख का प्रकाशन निः शुल्क होगा ।
- लेख को प्रकाशन के लिए ईमेल आई डी pashupalakmitra1@gmail.com पर भेजना होगा।
- लेखक को निम्न प्रारूप में एक स्वहस्ताक्षरित प्रमाण पत्र लेख के साथ सलग्न करना होगा प्रमाणित किया जाता है कि संलग्न लेख...शीर्षक..... लेखक ...लेखक का नाम ..... द्वारा लिखित एक मौलिक, अप्रकाशित रचना है, तथा इसे प्रकाशन के लिए किसी अन्य पत्रिका में नही भेजा गया है।
- लेख में वर्णित सूचनाओं का दायित्व लेखक का होगा , संपादक का नही ।